स्वतंत्रता का अर्थ एवं मानव जीवन में महत्व (Research Paper)

स्वतन्त्रता का सिद्वान्त उतना ही पुराना है, जितना कि दर्शन। प्रारम्भ से ही इसका चिन्तन विश्लेषण अनेक प्रकार के दार्शनिको ने करने का प्रयास किया गया, परन्तु आज तक इसकी न तो कोई सर्वमान्य परिभाषा सुनिश्चित हो सकी और न कोई सिद्वान्त ही स्थापित हो सका। बार्कर ने ठीक ही लिखा है कि 'स्वतन्त्रता का विकास अपनी मूल जड़ से एक बड़े और शाखाओं वाले वृक्ष के रूप में हुआ तथा इसकी विभिन्न शाखाऐं एक दूसरे से उलझी सी है।'' सत्य है कि स्वतन्त्रता का विवेचन विचारकों ने देश, काल और परिस्थिति से प्रभावित होकर किया है।

स्वतन्त्रता का व्युत्पति लभ्य अर्थ होता है– अपना शासन या अपनी अधीनता क्योंकि इसका अंग्रेजी रूपान्तर 'लिबर्टी' शब्द लैटिन भाषा के जिस 'लिबर' शब्द से उद्भत हुआ है उसका अर्थ होता है– स्वाधीनता या स्वतन्त्रता । ''स्व'' का अर्थ होता है 'अपना' और 'तन्त्रता' का अर्थ है– अधीनता या शासन। इस प्रकार स्वतन्त्रता बन्धनमुक्ति का बोध कराती है। उल्लेखनीय है कि यह पूर्णतया बन्धनों का अभाव भी नही है, अन्यथा यह 'स्वच्छन्दता' या 'उच्छृंखलता बन जाऐगी जिसे अंग्रेजी भाषा में 'लाइसेन्स' कहते है और इसका अर्थ होता है – उच्छृखलता, अराजकता या मनमानापन की स्थिति।

स्माज की सदस्यता के कारण की मनुष्य के लिये सम्भव है ि कवह अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास कर सकता है। इसी हेतु प्रत्येक समाज मे व्यक्ति को दशांए है। प्रत्येक व्यक्ति को इस अधिकारों के उपयोग में किसी प्रकार की बाधा नही होना चाहिए। बिना इसके अधिकारों का व्यक्ति के लिए कोई अर्थ नही है। समाज के प्रत्येक सदस्य के लिए समान अधिकार होने चाहिए जिससे स्वतन्त्रता पूर्वक व्यक्तित्व का विकास हो सके। इसी को स्वतन्त्रता कहा जाता है।

'स्वतन्त्रता' शब्द विभिन्न विचारकों तथा राजनितिज्ञों द्वारा विभिन्न अर्थो में प्रयुक्त किया गया है। आधुनिक इतिहास में स्वतन्त्रता के नाम पर अनेक राजाओं तथा उनके समर्थको ने निंरकुश शासन को उचित बतलाया तथा प्रजाजनों ने स्वतन्त्रता के लिये ही अपने राजाओं को पदच्युत किया तथा उनके प्राण तक ले लिये।

साधारण बोलचाल की भाषा में स्वतन्त्रता से तात्पर्य किसी भी प्रकार के बन्धनों के न होने से समझा जाता है । इस दृष्टि से वह पूर्ण स्वतन्त्र कहलायेगा जो कि किसी भी प्रकार के निंयत्रणों से मर्यादित नही है, तथा किसी भी प्रकार के नियमों का पालन नही करता है। जो उसके मन मे आता है वह करता है, संक्षेप मे जो व्यक्ति पूर्णतः स्वेच्छाचारी है। यदि स्वतन्त्रता से यह तात्पर्य लिया जाये तो स्वतन्त्रता तथा स्वेच्छाचारिता पर्यायवाची हो जायेगे। परन्तु यदि इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाये तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि ऐसी स्थिति में समाज ही नष्ट हो जायेगा। क्योंकि सामाजिक जीवन की प्रथम आवश्यकता यह है कि प्रत्येक व्यक्ति सर्वथा समाज के अन्य सदस्यों के अधिकारों का भी ध्यान रखे। मुझे अपने अधिकारों का उपभोग करने में दूसरे के अधिकारों पर अतिक्रमण नही

करना चाहिये। समाज का आधार सहयोग है। सहयोग बिना कुछ नियमों के असंभव है। अतएंव समाज से लिये नियमों का होना आवश्यक है। नियमों के होने से स्वेच्छाचारिता संभव नही है। इसलिये यदि स्वेच्छाचारिता ही स्वतन्त्रता है तो यह सामाजिक जीवन की विरोधिनी है तथा समाज में इस प्रकार की स्वतन्त्रता संभव नही हो सकती क्योकि इस प्रकार की स्वतन्त्रता से तात्पर्य केवल मत्स्य न्याय से ही हो सकता है। ऐसी अवस्था में मनुष्यों के मध्य संबन्ध केवल युद्व का हो सकता है और मनुष्य परस्पर एक दूसरे के नाश मे सतत संलग्न रहेगे। अतएंव स्वतन्त्रता तथा स्वेच्छाचारिता पर्यायवाची नही कहे जा सकते है।

हॉब्स के अनुसार, स्वतन्त्रता से तात्पर्य विरोध के अभाव से है, विरोध का अर्थ बाहय का अर्थ बाहय नियन्त्रणों से है। इस अर्थ के अनुसार, जो कि सामान्यतः स्वीकार किया जाता है, स्वतन्त्र मनुष्य वह है जिसे उन कार्या को करने मे, जिनको वह अपने चातुर्थ तथा शक्ति से करने के योग्य है, किसी प्रकार की बाधा या अवरोध नही है। हॉब्स के अनुसार स्वतन्त्रता से तात्पर्य नियन्त्रणों का अभाव है, परन्तु वह यह भी स्वीकार करता है कि व्यक्ति की स्वतन्त्रता सम्प्रभु की असीम शक्ति को मर्यादित नही करती है।

लॉक लिखता है कि 'व्यक्ति की नैतिक स्वतन्त्रता यह है कि वह पृथ्वी में प्रत्येक उच्च शक्ति के अधीन नही है, परन्तु केवल प्राकृतिक नियम द्वारा नियमित होता है। समाज में मनुष्य की स्वतन्त्रता यह है कि वह किसी भी विधायनी शक्ति के, उसके अतिरिक्त जो कि राज्य में उसकी सहमति से स्थापित हुई है, अधीन नही है तथा वह किसी इच्छा के अधीन नही है और न किसी कानून द्वारा नियंत्रित है, उस कानून के अतिरिक्त जो कि व्यवस्थापिका उसमें रखे हुऐ प्रन्यास के अनुसार बनायेगी। लॉक की परिभाषा से यह स्पष्ट है कि स्वतन्त्रता कानून के अतिरिक्त अन्य नियन्त्रणों का अभाव है।

रूसो के शब्दों में, ''मनुष्य राज्य में नैतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करता है, जिसके द्वारा यथार्थ में वह अपना स्वामी होता है क्योकि क्षाणिक इच्छाओं के अनुसार आचरण करना ही दासता है, स्वतन्त्रता उस विधान का पालन करना है जो कि हम अपने को स्वयं प्रदान करते है।'' रूसों जैसा कि पहले लिखा जा चुका है सार्वजनिक इच्छा ही अधीनता को ही यथार्थ स्वतन्त्रता मानता है।

मॉन्टेस्क्यू अपने ग्रन्थ 'The spirit of the laws' में लिखता है कि स्वतन्त्रता शब्द के विभिन्न अर्थ लिये जाते है। कुछ के अनुसार इसका अर्थ उस व्यक्ति स्थानाच्युत करना है जिसे उन्होने निरंकुश शक्ति प्रदान कर दी थी, दूसरो के लिये यह एक शासक को निर्वाचित करने का अधिकार है, जिसकी आज्ञा पालन करना उसका कर्तव्य होगा, कुछ के लिये यह अस्त्र धारण करने का अधिकार तथा इस प्रकार हिंसा कर सकने की शक्ति है, कुछ अन्य मनुष्यों के अनुसार, संक्षेप में वह अपने ही देश निवासी के द्वारा अथवा अपने ही कानूनों द्वारा शासित होने का अधिकार है। एक राष्ट्र विशेष में बहुत काल तक यह भावना थी कि स्वतन्त्रता लम्बी ढाढ़ी रखने का अधिकार है।

''यह सत्य है कि प्रजातन्त्रों में ऐसा प्रतीत होता है कि लोग अपनी इच्छानुसार कार्य कर रहे है। परन्तु राजनैतिक स्वतन्त्रता से तात्पर्य अमर्यादित स्वतन्त्रता से नही है। राज्यों में अर्थात् उन समाजों में जो कि विधि द्वारा नियन्त्रित है, स्वतन्त्रता का अर्थ अपनी उचित इच्छा के अनुसार कार्य करने की शाक्ति तथा अपनी उचित इच्छा के विपरीत किसी कार्य के लिये बाध्यन किये जाने से हो सकता है''।

''हमें सर्वदा स्वेच्छाचारिता तथा स्वतन्त्रता के मध्य अन्तर को ध्यान में रखना चाहिये । स्वतन्त्रता कानूनों के अनुसार आचरण करने का अधिकार है तथा यदि कोई नागरिक कानूनों के विपरीत आचरण करता है तो उसकी स्वतन्त्रता तत्क्षण ही नष्ट हो जायेगी। क्योकि अन्य सब नागरिक भी उसी प्रकार आचरण करेंगें। अग्रेंज दार्शनिक ग्रीन के अनुसार स्वतन्त्रता व्यक्ति को तब प्राप्त होती है जबकि वह अपनी सदिच्छा के अनुसार आचरण करता है। इसलिये उसने कहा है कि स्वतन्त्रता उन कार्यों को करने अथवा उन वस्तुओं के उपभोग करने की शक्ति है जो कि करने तथा उपभोग करने योग्य है।

प्रों0 लास्की के शब्दों में स्वतन्त्रता उन सामाजिक दशाओं के उपर नियंत्रण का भाव है जो कि आधुनिक सभ्यता में व्यक्ति के विकास के लिये अत्यांवश्यक है। एक अन्य स्थल पर वह लिखता है कि स्वतन्त्रता से तात्पर्य अधिकारें के होने से है। फ्रेंच अधिकारों की घोषणा (1789) में यह कहा गया था कि ''स्वतन्त्रता वह उस सीमा तक सब करने की शक्ति है जहॉ तक दूसरों की हानि नही होती है, अतएंव प्रत्येक व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकारों के उपभोग करने की इसके अतिरिक्त कोई सीमा नही है कि समाज के अन्य सदस्यों के लिये भी इन्ही अधिकारों के उपभोग की पूर्व संभावना हो। ये मर्यादाएं केवल कानून द्वारा ही निश्चित की जा सकती है।

हर्बर्त स्पेन्सर ने लिखा है कि '' प्रत्येंक मनुष्य वह करने को स्वतन्त्रत है जिसकी वह इच्छा करता है यदि वह किसी अन्य मनुष्य की समान स्वतन्त्रता का हनन न करता हो।''

इन उपर्युक्त विविध परिभाषाओं से यह स्पष्ट हो गया कि स्वतन्त्रता से मुख्यतः यह तात्पर्य है कि प्रत्येक अपने अधिकारों का उपभोग स्वतन्त्रता पूर्वक कर सके परन्तु उसे दूसरे मनुष्यों के समान अधिकारों का ध्यान रखना चाहिऐ। उन विचारमो ने भी – जिनके अनुसार स्वतन्त्रता से अर्थ नियन्त्रणों का अभाव है– यह स्वीकार किया है कि समाज के अन्दर नियन्त्रणों का होना अनिवार्य है। इसीलिये इन विचारको के मतानुसार राज्य एक आवश्यक बुराई है । यह व्यक्तियों की स्वतन्त्रता को मर्यादित कर सामाजिक जीवन को सम्भव बनाता है। स्वतन्त्रता से केवल नियंत्रणों का अभाव समझनद इसके केवल एक पक्ष को देखना है। स्वतन्त्रता के लिये अधिकारों का होना आवश्यक है। बिना अधिकारों के स्वतन्त्रता केवल नाम मात्र की स्वतन्त्रतो रह जायेगी और इसका कोई महत्व नही रहेगा। अतएंव प्रत्यें राज्य का यह कर्तव्य हो जाता है ि कवह अपने नागरिकों को उन सुविधाओं को प्रदान करे जो कि आज सभ्य तथा तथा सुसंस्कृत जीवन के लिये आवश्यक है। स्वतन्त्रतो से तात्पर्य आज के युग में केवल राजनैतिक स्वतन्त्रतो नही है । इससे तात्यर्य सांस्कृतिक तथा आर्थिक स्वतंन्त्रता भी है। बिना सांस्कृतिक सांस्कृति स्वतन्त्रतो के मानसिक तथा आध्यात्मिक विकास सम्भव नही है।

स्वंतन्त्रता शब्द की उपर्युक्त विवेचनाओं के अतिरिक्त भारतीय संस्कृति में सदा–सर्वदा से जीवन की पूर्णता के लिये तत्पर रहने की शिक्षा व संस्कार मिलता रहा है। भारत के तीन प्रमुख दार्शनिक विवेकानन्द, टैगोर एंव अरविन्द घोष ने अपने शिक्षा दर्शन में मानव जीवन में स्वतन्त्रता के महत्व को रेखांकित किया है। विवेकानन्द, टैगोर एंव अरविन्द घोष ने मानव जीवन की पूर्णता के लिये मानवीय

आत्म शक्ति के पूर्ण जागरण की ही स्वतन्त्रता का नाम प्रदान किया है, जो सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक आंडबरो, से मुक्त होकर मानव जीवन के चरम आदर्श को प्राप्त करे न कि मानव जीवन से पलायन करने की प्रवृत्ति रखें।

निष्कर्षतः स्वतंन्त्रता का महत्त्व मानव जीवन की पूर्णता को प्राप्त करने मे है जिसे पाने के लिये ऋग्वेद सूक्त आ नो भद्राः क्रत्वों यन्तु विश्वतः (let noble thought, come to us from every side) को आधार बनाकर ऐसी शिक्षा को संस्कारित करना है जो आत्मीय शक्ति को जागृत करे, आत्मा को समस्त बंधनों से स्वतन्त्र करके मानव जीवन को पूर्ण करने में महत्वपूर्ण सिद्व हो।